उपवास-चिकित्सा ।

लेखक

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा

सम्पादक, नागरीप्रचारिणीपत्रिका और सह० सम्पादक,
हिन्दी-शब्दसागर ।

प्रकाशक,

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

अगस्त १९२५ ई० ।

विषय-सूची ।

वक्तव्य।

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोड़े लोगोंके भाग्यमें होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियोंकी संख्या इतनी बढ़ती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूंढ़ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँतक कि बहुत पहले ही इस देशमें 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। शरीर स्वयं कभी व्याधि-मंदिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है; पर हम आहार-विहार आदिके प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करके स्वयं उसे व्याधि-मन्दिर बना लेते हैं। प्राणि-मात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी यह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधिको शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वयं नीरोग कर लेनेकी सबसे बड़ी शक्ति विद्यमान हो, उसे तरह तरहके विषोंके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक आश्चर्य और दुःखकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा-प्रणालियोंमें जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानिकारक है, सारे संसारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलो-पैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य ओषधियोंको [illegible] तीव्र, उग्र और भयंकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनको [illegible] बलपूर्वक [illegible] थोड़ी [illegible] है। इस पुस्तकमें [illegible] प्राकृतिक चिकित्सा [illegible]

उपवास-चिकित्सा ।

हमारे शरीरका संगठन ।

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि वनस्पतिका शरीर इस प्रकार बना हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके बाहरी या अंदरी पदार्थके कारण रोग उत्पन्न होने लगे तो यह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका बल-प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमें रहने दिया जाय तो—उस रोगको आप ही आप दूर कर देगा। शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तुको अपने अंदर नहीं रहने देगा। उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा। एक तो स्वयं हमारे शरीरमें ही हरदम बहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विष उत्पन्न होते रहते हैं; दूसरे हम लोगोंकी दुर्बलता और कुपथ्य आदिके कारण उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है। यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको बाहर निकालनेका काम थोड़ी देरके लिए भी बंद कर दे तो जीवन असंभव हो जाय। श्वास पसीने, मल, मूत्र थूक और रेंट आदिके रूपमें शरीरके भिन्न भिन्न भागोंसे सदा हमारे शरीरसे तरह तरहके विष निकलते रहते हैं। हमारा शरीर ये काम अपने आप स्वयम् करता है। जिस दशामें हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि [illegible]

शरीरकी भीतरी क्रिया।

शरीरविज्ञानशास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका निर्माण और ह्रास होता रहता है। साधारणतः लोगोंको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अंगरेजीमें Cells कहते हैं। ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियाके कारण हर दम नष्ट होते रहते हैं और रक्त-संचालनकी सहायतासे उनके स्थान पर नये कोश भी बनते रहते हैं। इस प्रकार हरदम शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवधारियोंके अतिरिक्त वनस्पतियोंमें भी होती रहती है। अंगरेजीमें परिवर्तनकी इस क्रियाको Metabolivm कहते हैं। हमारे यहाँ प्राचीन बौद्धोंने भी इससे मिलता जुलता एक प्रकारका सिद्धान्त या विधि क्षणिकवाद का समर्थन करते हैं। इस मतके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी अवस्था या स्थितिमें प्रतिक्षण बराबर परिवर्तन होता रहता है। अस्तु। पुराने और नये कोशोंका जो अंश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अंशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें। उस दूषित अंशके बाहर निकलनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिसमें वह अंश पसीनेके रूपमें निकलता है। इनके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुर्दे, [illegible] और अंतड़ियों आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अंश निकलता रहता है [illegible] कर देता है। यह दूषित अंश [illegible]

शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बड़े परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल-मूत्र और पसीना आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बंद हो जाय और वे शरीरके अंदर ही रह जायँ तो तुरंत ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या cells अधिक परिमाणमें नष्ट होते हैं, पर नये कोश अधिक परिमाणमें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते हैं। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए कामकाज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे तो उसमें नवीन शक्ति नवीन जीवनका संचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते हैं और कभी आराम नहीं करते वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिमाणमें बनते हैं। जाग्रत अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने नष्ट होकर विकार का धारण कर करते हैं उनका शमन ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौड़नेवालोंको [illegible] लोग दम बाँधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते हैं उनके छातीमें एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। [illegible] नामक एक [illegible] ने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम दौड़ने आदिके कारण शरीरमें इतना अधिक दूषित अंश रक्तमें मिल [illegible] है कि [illegible] के द्वारा बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाते हैं। उस [illegible] जाता है और उसके [illegible] [illegible] बहुत आवश्यक है। [illegible]

विवेक-युक्त कहलाता है, वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मांसाहारी जीवोंकी श्रेणीका । उसे शराब, कबाब, मांस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बड़ी प्रसन्नतासे खा लेगा । यही नहीं बल्कि वह स्वयं उन सब पदार्थोंको पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामें वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रखेगा! लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते । बहुत ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है ? है, और अवश्य है । पर मनुष्य जान बूझकर उस ज्ञानका गला घोंटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है । छोटे छोटे बच्चोंको मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है, पर माता-पिता और घरके दूसरे लोग उसे तरह तरहसे बहका कर मांस खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं । यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है ? बड़े बड़े शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुँह बिचकाते हैं ' क्यों ? इसी लिए कि वे अपने सहज-ज्ञानकी हत्या करते हैं, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते हैं । सुरती खाने, भाँग, अफीम, गाँजा आदि पीनेके लिए लोगोंको क्यों महीनों थोड़ी थोड़ी मात्रा बढ़ा कर अभ्यास करना पड़ता है ? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावतः उनके खानेके योग्य नहीं होते । इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रकृतिमें परिवर्तन करना पड़ता है ।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रह जाता बल्कि आगे चलकर वह और भी विकरालरूप धारण करता है । एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें अपनी आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है । आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र [illegible] । बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा[illegible] । आप अपनेको लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं । आप सबेरे तो भर[illegible] भोजन करके चले हैं, पर रास्तेमें कोई बढ़ियासी चीज बिकती हुई देखकर [illegible] होते हैं और उसके खानेका मौका ढूँढ़ने लगते हैं । किसी मित्रके यहाँ निमं-

आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशाबकी शिकायत उत्पन्न होती है, जिसमें दर्द आरम्भ होता है और अंतमें बुखारतककी नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे बाहर निकालनेका प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकर रूप धारण करता है, उससे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजनका बचाहुआ दूषित अंश बाहर निकलनेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमें पहुँचता है उसमें एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क आदि सभी अवयव इस दूषित अंशके शिकार बनते हैं और मनुष्यको गठिया, बवासीर, भगंदर, कोढ़, कण्ठमाला और तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अंश कम हुए तो पहले इन रोगोंके चिह्न मात्र ही उत्पन्न होते हैं, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणोंसे एक बड़े विद्वानने बहुत जोर देकर कहा है कि—" अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते, जितने सुकालमें अधिक अन्न खानेके कारण, तरह तरहके रोगोंसे, मर जाते हैं ! "

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुत से साधारण बुद्धिके लोग भी जानते हैं। बड़े बड़े डाक्टरोंके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीर पर बहुत बोझ पड़ता है और उसे भोजनके अनावश्यक अंशोंको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीर पर चार प्रकारके बुरे प्रभाव पड़ते हैं.—

(१) अधिक भोजनसे रक्त अस्वच्छ और [illegible] हो जाता है, जिनसे बहु[illegible] हो जाता है

([illegible] होता है, अधिक भोजन [illegible] और [illegible] जाता है

(३) [illegible] (Nervous system) [illegible] अधिक भोजन करनेसे [illegible] है और उसक[illegible]

या विरहो बाहर निराशोंमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका जो दूषित अंश बचा रहता है उसमेंसे विष निकल कर पेट और भेजेमें फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अपकार सम्मिलित हैं उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमें बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल-वृद्धिमें सहायक होता है, उसमेंका कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमें इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है या नहीं, दिनमें कमसे कम तीन बार खूब डटकर भोजन कर लेते हैं। इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बारका भोजन भी बीचमें छोड़ दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहाँ तक कि हम चल फिर भी न सकेंगे। हम यदि *दिनमें पाँच बार भोजनके करनेकी आदत डालें तो कुछ दिनोंमें ही हर बार भोजनके* निश्चित समय पर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी; पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है। हम लोग उसी बनावटी भूखके गुलाम बन जाते हैं, इतने गुलाम बन जाते हैं कि हममें उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए, उससे आपको जो थोड़ा बहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही, पर यदि यह बात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई तो उन्हें आपका चेहरा 'बिलकुल उदास सूखा हुआ और पीला' दिखाई पड़ने लगेगा। क्यों? इसी लिए कि वे स्वयं भूखके गुलाम होते हैं। अब आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे बचनेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ़ करें। सबसे पहले आपको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय; पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उन्हें दूर किस प्रकार कर सकेगा? न्यूयार्कके एक बहुत बड़े डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फ्लिन्ट एम. डी. एल एल डी. ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर पर औषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बड़े बड़े डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकलका चिकित्सक-वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिसे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमें कालेजसे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व कर सकते हैं कि हम रोगोंके विषयमें सब बातें जानते और उन्हें तुरंत दूर कर सकते हैं पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बातें कभी न कहेगा। एक बड़े भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढ़ता जायगा, त्यों त्यों वह औषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी प्रधानता समझता जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगों और रोगियोंको देखते हैं, औषधियोंके गुणों परसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा-विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वयं कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पड़ेगा कि आजकलकी चिकित्साप्रणाली बिल्कुल अटकल-पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियोंपर औषधियोंकी केवल परख ही करते हैं। रोग और चिकित्सा सम्बन्धमें आजकल जितने नये आविष्कार होते हैं वे सब भ्रम और उत्साहके लक्षण माने जाते हैं, पर

वे ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममें डालते हैं—उन्हें ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते हैं।

समस्त संसारके सब प्रकारके चिकित्सक दो भागोंमें बँटे जा सकते हैं। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजलीकी सहायतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिसानी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकारके दूसरे चिकित्सक आजाते हैं और दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंका सिद्धान्त एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न है। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अंगों पर अधिकार करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं; इन अदृश्य शत्रुओंके लिए हमारी ओषधियाँ, गोलियाँ और गोलोंका काम करती हैं। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सब प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें मित्रभावसे सहायक होते हैं। जब हमारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अन्दर उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते हैं, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोषोंको स्वयं ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है तब उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें ले आवे। शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें आते ही रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्सा-प्रणालियोंमें अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके नाशके लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके लिए। [illegible] रोगको दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओषधियाँ दी जाती हैं [illegible] नहीं रखा जाता कि रोगी पर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक [illegible] सिद्धान्त यह है कि रोगका [illegible] पर उसके कारणका नाश किया जाय [illegible] रोगी अपने आप स्वस्थ हो जाय। अंगरे-

योंसे रोगोंको दबाने, उनका मुकाबला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दबाना या नष्ट करना न चाहिए बल्कि उनके मार्गमें सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और नीरोग होजाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकारकी ओषधियोंके ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डाक्टरका मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेवाले साधन हमारे शरीरके बाहर किसी डिबिया या बोतलमें बन्द हैं, वह साधन, वह शक्ति तो स्वयं हमारे शरीरके अन्दर है। सब लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते हैं, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते। * मनुष्यको चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितितक पहुँचाना चाहती हो, हम स्वयं उस स्थितितक पहुँच जायँ। हमें चंगा करनेका काम हमारी जीवन-शक्ति स्वयं कर लेगी।

सिरमें, पेटमें अथवा इसी प्रकारके और स्थानोंमें जो पीड़ें आदि सताती हैं, उनको छोड़कर रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विजातीय या गन्दा पदार्थ बाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह कि वह स्वयं हमारे शरीरमें पड़े हुए ईंधन या निर्जीव पदार्थोंके कारण उत्पन्न हो। दोनों दशाओंमें उनके कारण हमारे शरीरके कामोंमें रुकावट पड़ती है।

[illegible] है कि केवल इन रुकावटोंको दूर करने और उनके कारण [illegible] [illegible]

टोंको दूर करने और अपने कामोंमें सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है। क्या इस प्रयत्नको जो सब प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको बनाये रखनेके लिए होता है, जो हमें शरीरके भीतरी शत्रुओंसे बचाता है, तरह तरहके जहरीले तेजाबों, शराब मिली हुई ओषधियों, जुलाबों और नश्तरों आदिसे रोकने या दबाने आदिकी आवश्यकता है?

जो बात मनुष्यजातिकी समझमें सैकड़ों पीढ़ियोंसे दृढ़तापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरंत ही दूर नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरों पर लोगोंमें बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है। जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित-कलाका पूरा पूरा आनन्द सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण करनेके लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते। बहुधा बातोंकी सत्यताका विश्वास क्रमशः ही होता है, एकदमसे नहीं हो सकता। साथ ही इस प्रकारके गूढ़ विषय केवल समझानेसे ही मनमें नहीं बैठ सकते, मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण करते करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उपयोगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए विचारवान् पाठकोंको इस विषय पर पहले तो अच्छी तरह मनन करना चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभव करना चाहिए। यदि पाठक पक्षपात छोड़कर इस स्थलपर बतलाई हुई बातोंका विचार करेंगे तो हमें आशा है कि उनकी उपयोगिता अवश्य ही उनकी समझमें आ जायगी।

चिकित्साके दोष।

यह [illegible] पहले ही बतला चुके हैं कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोंको दूर करनेके लिए हमारी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] हम 'रोग' कहते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहता और हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। बैठेम नामक एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके सम्बन्धमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें आपने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको संक्रामक समझ कर उनकी संक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल औषधियों आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रायः रोगोंको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों संक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक औषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वयं रोग ही बहुतसे मनुष्योंके प्राण बचा लेता था।

पुराने ढंगकी जितनी चिकित्सा-प्रणालियां हैं उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके ऊपरी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानों उस क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम औषधियों आदिसे उस क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं तब उस क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीरके भीतर हम [illegible] आप-ही-आप प्राकृतिक कारणोंसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हम दो एक दिन बुखार आने और किसी औषधिकी एक या दो मात्रामें ही हमारा बुखार रुक जाय तो हम यही समझते हैं कि उस औषधिसे हमारा बड़ा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे होता हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरके [illegible] बाहर निकलना चाहता था वह उस औषधिके कारण रुक गया [illegible] है। यदि वह [illegible] ही होगी, [illegible] बढ़े [illegible]

[illegible]

विषोंको देहसे दूर करनेमें पूरा पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विषोंसे होती है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते हैं। इन विषोंके एकत्र हो जानेकी सूचना हमें समय समय पर सिरदर्द, कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। बहुधा लोग इस लिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, बल्कि वे इसलिए मरते हैं कि उनके शारीरिक संगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोंको निकाल बाहर करे। इस विषयमें बहुत बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणों पर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके ऊपरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़े पर वे वास्तवमें आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी बहुत बड़ी शृंखला होती है और उस शृंखलाकी अंतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको गठिया हो और उसे तरह तरहके तेल मले जायँ तो रोगीके अंग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न मान जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे वह नीरोग हो जाय तो इसी बातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि औषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमें भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दबे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें बना हुआ है।

पर थोड़ासा विचार करनेसे इस प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आता है। चाहे [illegible] करें और [illegible] न करें पर इसमें सन्देह नहीं कि औषध [illegible] दूर करनेमें [illegible] दे सकते हैं। पर व्यायाम और पथ्य [illegible] कोई [illegible] नहीं होता। वे केवल [illegible] हैं जब तक उन लक्षणोंको दूर करनेके [illegible] यह [illegible] हो जायगी

कि, उन स्थानोंका शरीरमें कोई मूल कारण ही नहीं रह गया। पर ओषधियोंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। जो रोग वास्तवमें शरीरको शुद्ध करनेकी क्रिया है उसे हम ओषधियोंसे कैसे चंगा कर सकते हैं? पर उसे स्वाभाविक दशामें छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदिसे उसके काममें सहायता देकर हम उस क्रियाको पूर्णता तक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छातीके ऊपरके भागमें एकत्र हुए विकार आदिको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी क्रिया मात्र है। यदि वह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाकसे न निकलता तो उसे किसी अस्वाभाविक मार्गका अवलंबन करना पड़ता। फोड़े फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकारकी क्रियायें हैं, पर उनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृतिका वह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थको उस स्थानसे बाहर निकालनेके लिए होता है, जहाँ उस पदार्थको रहनेका कोई अधिकार नहीं है। दरद भी इसी प्रकारकी क्रियाका चिह्न मात्र है, वह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखारमें हमारे शरीरके विकार आदि जलाये जाते हैं, पसीनेवाली क्रियासे इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूपमें होती है। तात्पर्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सासंबन्धी विशेष बातोंको जाननेके पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि, जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें नीरोग बनानेका प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्डके चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवेसने एक बार एक व्याख्यानमें कहा था कि आजकलके चिकित्सक चिकित्सा करनेमें बड़ी भूल करते हैं। अगर रोगीको ज्वर हो तो उसका ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है और यदि उसे भूख लगती हो तो जबरदस्ती भूख लगाई जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोगका नाश करनेका प्रयत्न करते हैं जो वास्तवमें हमारे लिए ईश्वरकी बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकारसे हमारा उपकार और [illegible] करता है। [illegible] सम्राट् रोग न होते तो मानव-जा[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] अपने कथनके समर्थनमें कई [illegible] [illegible] और डाक्टर बड़े [illegible] [illegible] [illegible] बहुत कल्याण [illegible] है।

प्रकार अन्तर्गत है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार छुड़ाया ही नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें ऊपरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है तब उस दोषको दूर करनेके लिए कुछ विशेष शक्तिकी आवश्यकता होती है, शरीरको उसके दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमें यह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकतासे कम हो तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिमें रहना असम्भव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंगमें घर कर लेगा। चोट चोट लगने, आँखके विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज सिर घूमने आनेकी अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें रोगके जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं, उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकांगी रोगोंको अच्छे अच्छे डाक्टर कोई स्वतंत्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है।

एकांगी रोगोंकी धारणा वास्तवमें अज्ञान और अदूरदर्शिता आदिके कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक संगठन एक ही सूत्रमें सम्बद्ध है और उसका इस प्रकार सम्बद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगोंको एकांगी मानकर जो चिकित्सा की जाती है वह शरीरके रोगी अंगमें या तो वास्तविक रोगके स्थानको दूसरे अंगमें स्थानान्तरित कर देती है और या उन्हें गहरी और भीतरी अंगोंमें दबा देती है। चिकित्सकोंको इस बातका ध्यान ही नहीं होता कि जिन्हें वे एकांगी रोग समझते हैं वे वास्तवमें [illegible] किसी दोषके लक्षण मात्र हैं। [illegible] निर्दोष ही नहीं बल्कि [illegible] दूसरी ही चिकित्सा [illegible] शरीरकी सारी [illegible] दूर हो सकता है [illegible] और [illegible] और

लिए हानिकारक हैं उन्हें जानबूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है ?

पर प्राकृतिक चिकित्सामें यह बात नहीं है। यह स्वयं हमारी शारीरिक शक्तियोंमें ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विषोंको अनायास ही नष्ट करके उनका दोष अंश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दर्दको लीजिए। डाक्टरी चिकित्सामें उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अंगमें पीड़ा होती है; वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए पिचकारियोंके द्वारा पीड़ित अंगमें अफीमका सत या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अंग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है; डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेसे मतलब !

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं ! इसमें रोगके लक्षण मात्रको दबा देने और साथ ही शरीरके अन्दर थोड़ासा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त और क्या होता है ! पीड़ा वास्तवमें किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है वह स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिह्न मात्रको दबा देनेसे उसके कारणका नाश हो सकता है ! कभी कभी दरद दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फसद खुलाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर जोरसे चिल्लाकर हमें दोषोंकी सूचना दे और हम गला घोंट कर उसे चुप करदें ! हमारा ज्ञानतन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दरदको भगाने पर हमसे सहायता माँगे और चिकित्सक तरह तरहके विष और अन्य चीजोंसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया ! यह रोगके प्रत्यक्ष लक्षण उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है ! इस सम्बन्धमें डा॰ ट्रालने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—"औषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए औषधि देना मानो एक और रोग उत्पन्न

करना है। ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकते हैं? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं? क्या प्रकृति एककी अपेक्षा दो दोषोंको सहजमें दूर कर सकती है? कदापि नहीं।" विषोंसे रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूतोंसे मुरादें माँगना है।

दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विषयमें अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि वे बहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे बाहर निकाल देती हैं, पर उनका भी कुछ न कुछ दूषित अंश शरीरमें रह ही जाता है। जुलाब लेनेसे लाभके अतिरिक्त होनेवाली हानियाँ भी कम नहीं हैं। इन हानियोंका अनुभव उन लोगोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो बार नियमित रूपसे जुलाब लेकर अभ्यस्त हो जाते हैं। दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे जो विकार ओषधियोंकी सहायतासे शरीरके बाहर निकाला जाता है वही विकार जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी शरीरको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये ही निकाला जा सकता है।

ओषधियोंके विषयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न भिन्न अंगों—मस्तक पेट, आँत, गुर्दे, जिगर, चमड़े आदि—पर अपना प्रभाव डालती हैं और इनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने, या कै आदिके रूपमें शरीरके विकृत पदार्थोंको बाहर निकालती हैं। पर डाक्टर डूजरका मत है कि, ओषधियाँ शरीर पर कोई प्रभाव नहीं डालतीं। वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वयं उन्हीं ओषधियोंको जिन्हें वह [illegible] शरीरके बाहर निकाल सकती है, निकाल देती है, और लोग उन्हीं ओषधियोंको उन अंगों पर प्रभाव डालनेवाली समझते हैं। जिस ओषधिको हमारी प्रकृति [illegible] द्वारा सहजमें बाहर निकाल सकती है वह ओषधि [illegible] लानेवाली समझी जाती है और [illegible] ओषधिको हमारी प्रकृति दस्तोंके द्वारा बाहर निका- [illegible] ओषधि- [illegible]

[illegible]

पौष्टिक औषधें।

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक औषधियाँ खाते हैं। यूरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोंका मुख्य और सारभूत स्पिरिट या एल्कोहल होता है और इस देशमें अफीम आदि। तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमें किसी न किसी प्रकारका मादक विष ही शक्ति-वृद्धिके लिए अनेक रूपमें खाया जाता है। अन्य औषधोंकी अपेक्षा पौष्टिक औषधियाँ मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीर पर प्रभाव पड़ता है पर वास्तवमें होता यह है कि, शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ। पर सच पूछिए तो उनके शरीर पर उन औषधियोंका प्रभाव बिलकुल उलटा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोंसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है; पर उनका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है। परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है तब कुछ समयके लिए उनमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अंगोंको फुरतीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अंगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मादक द्रव्योंमें एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता है। वह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योंका बुरी तरह नाश करते हैं और फलतः शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधोंका प्रभाव हमारे शरीर पर दो प्रकारसे पड़ता है। एक [illegible] वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त [illegible] विषकी तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंसे उत्पन्न [illegible] हुई [illegible] है। [illegible] समय चलती है

उस समय उसका स्वाद तो बहुत भला मालूम होता है, पर उसके जल-बुझनेके बाद राख ही राख बच रहती है।

बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधें पाचन-शक्तिको बढ़ाती हैं; पर यह विश्वास भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन-शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन-शक्ति सदा बहुत मन्द रहती है। बहुधा शराबी रातको शराब पीनेके बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं। भारतमें बहुधा ब्याह, ब्राह्मण निमंत्रण आदिके समय खूब भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर बहुत भूख लगती है और वे दोगें अन्न खा जाते हैं, पर वही भाँग पीनेवाले सदा इस बातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो बहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे? मादक द्रव्योंसे तो पाचन-क्रियामें बाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो व्हिस्कीकी केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो बढ़ जाती है पर खाया हुआ पचता नहीं।

मादक द्रव्योंका एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीरमें गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी बिलकुल निर्मूल है। डाक्टर रिचर्डसने मद्यपान पर एक पुस्तक लिखी है। उसमें एक स्थान पर आपने लिखा है—"किसी मनुष्यको कोई मादक द्रव्य पिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम होगा कि मादक द्रव्यने उस मनुष्यके शरीरकी उष्णता कम कर दी है। इसके शरीरके ऊपरी भागमें अवश्य थोड़ी बहुत गरमी जान पड़ेगी, पर वास्तवमें इस बाह्य [illegible] मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठंढा होता जाता है। हृदयसे कुछ रक्त खूब वेगसे [illegible] है और [illegible] ऊपरी [illegible] पहुँच कर उसे [illegible] [illegible]

औषधों पर कुछ सम्मतियाँ ।

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढ़कर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही पैदा होते हैं। उक्त बातें केवल मन-गढ़न्त ही नहीं हैं बल्कि बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं। इस स्थान पर औषधोंके सम्बन्धमें कुछ बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ संक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा। नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बड़े डाक्टरी कालेजोंके अध्यापक हैं और बहुत दिनोंसे औषधों द्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अतः औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए उनके कथनसे बढ़कर और कोई प्रमाण नहीं हो सकता।

डा० स्टेफेन्स कहते हैं कि नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधें हैं, पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसकी समझमें आता है कि प्रत्येक औषधसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योंकी त्यों है। इसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंका ही अध्ययन करते हैं। प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधें भी वही काम करती हैं जो काम स्वयं रोगोंके कारण करते हैं। अधिक औषध भी रोग ही उत्पन्न करती है। एक स्थल पर आपने यह भी कहा है कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगको अच्छा करते हैं।

प्रो० क्लार्क कहते हैं,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँचानेकी धुनमें उल्टे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारों ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृति पर छोड़ दिये जाते तो अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तवमें विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रासे रोगीका बल घटता है। प्रो० [illegible]का मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जाँय उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। [illegible] कहते हैं—औषधोंसे कभी रोगी अच्छे नहीं होते, [illegible] है। डा० रशने लिखा है—चिकित्सकोंने [illegible] भयंकरता भी लड़ाई है। डाक्टर मेडकर

जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी औषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है ? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यों वे समझते जाते हैं कि औषधियों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिए गए हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेज़ी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति कालमें भी औषधियोंके गुण निश्चित और सन्तोषप्रद नहीं हैं। डा० अबरनथी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मानमें बढ़ती जाती है। सर मिचलका मत है कि रोगोंके मूल कारण तक औषधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। डा० राबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें औषधिका गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रमके विलक्षण मिश्रण पर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि औषधियोंपर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लंदनके रायल कालेजके फेलो डा० रैम्ज़ कहते हैं कि आजकलकी औषधि-चिकित्सा बड़े बड़े प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिये कि हमारी औषधियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ बिना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञानके नामपर आजकलके चिकित्सक [illegible] प्रकृति और रोगीकी वास्तविक चिकित्सा प्रणालीमें हस्तक्षेप अधिक करते हैं। इससे भी औषधियाँ रोगियोंके लिए बहुतही दुःखदायक होती हैं। इंग्लिश मेडिकल जर्नलमें छपकर प्रकाशित हुआ था कि आजकल जिसे चिकित्सा विज्ञान कहते हैं, वह वास्तवमें भी विज्ञान नहीं है। वह तो अटकलपच्चू सिद्धान्तों, अनहोनी कल्पनाओं और अनिश्चित सम्मतियोंका समूह है। सर [illegible] मत है कि रोग या चिकित्साके सम्बन्धमें अधिकांश कोई सिद्धान्त ठीक नहीं [illegible] कुछ रोगी [illegible] अच्छे होते हैं, बहुतेरे रोगी [illegible] अच्छे हो जाते हैं, और बहुत [illegible] अच्छे हो जाते हैं। [illegible] हुए रहकर अच्छे [illegible] रहते हैं और इसके बाद

चिकित्सकगण रोग दें और या रोगोंके जीवनकी रक्षाका कोई नया उपाय निकालें। डा० बोस्टक, जिन्होंने "औषधियोंका इतिहास" नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं—हम औषधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, उतना इन का अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। औषधिकी प्रत्येक मात्रा रोगीकी संजीवनी शक्ति पर एक अन्ध प्रयोग और अनुमान मात्र है। डा० सर जान्फ़ुर्ब्स, जिन्होंने प्रकृति और औषधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं—हमारी औषधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं, उनसे कहीं अधिक औषधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० पारकर कहते हैं कि निश्चित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अनिश्चित चिकित्सकोंका मेरा कहीं अधिक विश्वास है जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन रोगोंने स्वयं चिकित्सकोंसे कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डाक्टर जान्सन जो चिकित्सा-सम्बन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं—अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसारमें कोई चिकित्सक, सर्जन, अत्तार या दवा बेचनेवाला न होता तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो जाते और मृत्यु-संख्या भी बहुत घट जाती। * पेरिसके डाक्टर मेजेंडी कहते हैं—इस समय हम लोग बड़ा ही झूठ कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनबराके प्रोफेसर जान ह्यूज़ नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्षोंतक चिकित्सा करनेके उपरान्त औषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना औषधियोंके चिकित्सा आरंभ की। कहना यह है कि, डाक्टरी कालेजोंमें

---

* [illegible]

विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियोंका अध्ययन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उसके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूरका मत है कि औषधि विज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिन पर दिन बढ़ती हुई हत्यासे हुई है। प्रो॰ मार्कका मत है कि समस्त विज्ञानोंमें औषधि-विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनबराके मेडिकल कालेजके प्रो॰ ग्रेगरीने कहा है कि चिकित्साशास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकड़े मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिल्कुल ही भोंडे और भद्दे हैं। प्रो॰ कार्सन कहते हैं-हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी औषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे। सम्भवतः उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं। सर रिचर्डसनने कहा है कि औषधियोंके व्यवहारसे सभ्यलोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है। डा॰ टाइरमका मत है कि संसारमें तीन चौथाई आदमी दवाओंके नुस्खोंसे मरते हैं। फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर-शास्त्रवेत्ता मैगेन्डिक कहते हैं कि-औषधियोंके विषयमें संसारमें किसी को कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है, डाक्टरोंसे बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें। डाक्टर ओसलर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा-शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो औषधि-शास्त्रके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, बिना औषधिकी चिकित्साकी प्रशंसा या निन्दा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकानामें लिखते हैं कि औषधियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभमें टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बड़ी बड़ी भयंकर और उग्र औषधियोंका प्रयोग होता था। रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीर पर छाले डाले जाते थे और तरह तरहके भीषण उपाय किए जाते थे। पर आजकलके रोगियोंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित ही कोई औषधि दी जाती है। इससे यह सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि औषधियोंका उस रोगपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता [illegible] उनका व्यवहार किया जाता है। अन्तमें [illegible] यह [illegible] जो औष-धियोंको निरर्थक समझता [illegible]

प्राकृतिक चिकित्सा।

इन पृष्ठोंके पढ़नेके उपरान्त पाठकोंके मनमें सामान्यतः यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है ? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा-प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें औषधियोंका प्रयोग बिल्कुल नहीं होता, केवल बाहरी उपचारोंसे रोगोंको शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं। और जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, विद्युत-चिकित्सा आदि अनेक प्रकारकी चिकित्साएँ हैं। इनके अतिरिक्त मेस्मरिज्मके अनेक अंगों और प्रकारोंसे भी रोगियोंकी चिकित्सा की जाती है। यद्यपि ये सभी चिकित्साएँ प्राकृतिक कहलाती हैं, तथापि सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर यह पता लग जाता है कि इनमेंसे अधिकांशमें अनेक प्रकारकी ऐसी क्रियाओंकी आवश्यकता होती है जिन्हें कोई समझदार प्राकृतिक नहीं कह सकता। कुछ प्रणालियाँ अवश्य ऐसी हैं जो ठीक ठीक अर्थमें प्राकृतिक कही जा सकती हैं और उपवास-चिकित्सा इनमेंसे सर्वश्रेष्ठ है। उपवास-चिकित्सामें न तो किसी प्रकारके बाहरी उपचारकी आवश्यकता होती है और न किसी प्रकारके यंत्र-प्रयोगकी। इसमें आवश्यकता केवल इस बातकी होती है कि मनुष्य उस समय तकके लिए अपना भोजन छोड़ दे, जब तक कि उसे वास्तविक और स्वाभाविक भूख न लगे। इसके अतिरिक्त उपवास-कालमें मनुष्यकी शक्ति बनाए रखनेके लिए इसमें कुछ व्यायामका भी विधान है।

अब इस प्रणालीसे औषधि-चिकित्साका मुकाबला कीजिए। दो ऐसे मनुष्योंको लीजिये जिनकी पाचन-शक्ति नष्ट हो गई हो। उनमेंसे एक मनुष्य तरह तरहकी गोलियाँ खाकर, अवलेह चाटकर और दवाओंकी बड़ी बड़ी बोतलें खाली करके अपनी भूख बढ़ाता है, और दूसरा मनुष्य केवल दो-चार दिनोंतक उपवास करके और नसों-सम्बन्धी दो-चार नाजुक चक्कर लगाके अपनी भूख ठीक कर लेता है। अब आप ही सोचिए कि इन दोनोंमेंसे फायदेमें कौन रहा ! दवाएँ खाकर अपने शरीरको भीतर [illegible] अथवा उपवास और व्यायाम करने-वाला ! बड़े बड़े डाक्टरोंने [illegible] और अनुभव करके यह सिद्धान्त निकाला है कि किसी रोगकी औषध [illegible] [illegible]

छोटी मोटी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। किसीको कब्जियत आ घेरती है तो किसीके सिरमें दर्द होने लगता है। किसीकी नींद कम हो जाती है तो कोई दुर्बल और अशक्त हो जाता है। इस प्रकार प्रकृति तो हमें सूचना देती है कि हम उसके स्वभावके विरुद्ध काम करते हैं–उसके साथ निष्ठुरताका व्यवहार करते हैं, पर हम उसकी सूचनाओं पर ध्यान ही नहीं देते, जबरदस्ती उसका गला घोंटते जाते हैं, अन्तमें प्रकृति भी लाचार होकर अस्वाभाविक स्थितिमें पहुँच जाती है, और उस दशामें शरीर ऐसा निकम्मा हो जाता है कि बिना औषधियोंकी सहायताके चल ही नहीं सकता। जब कुछ समयमें शरीर साधारण औषधियोंका अभ्यस्त हो जाता है तब उसे अधिक तीव्र औषधियोंकी आवश्यकता होती है। यह क्रम बराबर बढ़ता चला जाता है और अन्तमें मनुष्यके प्राण लेकर ही छोड़ता है। पर जो मनुष्य उपवास करता, अथवा हल्की और जल्दी पचनेवाली चीजें खाता, स्वच्छ वायुमें रहता और खूब कसरत करता है, वह स्वयं आरोग्यताकी किस स्थिति तक पहुँच सकता है इसका अनुभव प्रत्येक विचारवान् मनुष्यको स्वयं करना चाहिए। व्यायामसे शरीरमें नए बलकी उत्पत्ति होती है, रग-पट्ठे मजबूत होते हैं, फफड़े, जिगर, गुरदे आदिके काम अधिक उत्तमतापूर्वक होने लगते हैं और सारे शरीरमें एक नई संजीवनी शक्ति आ जाती है। रोगीकी पाचन-शक्ति ठीक हो जाती है और उसे खूब खुलकर भूख लगती है। औषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे बुरे प्रभाव और अंश छोड़ जाती हैं, पर प्राकृतिक-चिकित्साकी औषधियाँ-व्यायाम, शुद्ध-वायु, हल्का और सुपाच्य भोजन आदि-रोगको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमें रोगको बलपूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।

सुप्रसिद्ध डाक्टर ई. एच. डेवीने एक बार कहा था-" किसी रोगी मनुष्यके पेटमें भोजन न रहने दो, इससे वह रोगी नहीं बल्कि रोग भूखों मर जायगा। " और यह बात वास्तवमें है भी बहुत [illegible]। उपवास-चिकित्साके सिद्धान्त इतने सरल, उपयोगी और लाभदायक हैं कि शरीर-शास्त्र वेत्ता मात्र उनसे सहमत हैं। सभी देशों और प्रान्तोंके [illegible] किसी न किसी अवसर पर [illegible] अनुसरण करते हैं। [illegible] सभी

खा जाते हैं और ऊपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध रबड़ी और मलाईका भी सत्यानाश करते हैं। रोजके भोजनसे दुगुना और तिगुना भोजन केवल इसी लिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्म्मग्रन्थोंमें उनकी आज्ञा केवल हित और कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म्मग्रन्थोंमें निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकारके नियमोल्लंघनकी भी सम्भावना नहीं होती। भारतमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहांकी स्त्रियां साधारणतः उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते हैं। कब्जियत और अनपच आदि रोग स्त्रियोंको बहुत कम होते हैं। जैनियोंके धर्म्मग्रन्थोंमें केवल अनेक प्रकारके उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहु-काल-व्यापी उपवासोंका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों बल्कि महीनों तक चलते हैं और बहुतसे अंशोंमें उन उपवासोंसे मिलते जुलते होते हैं जो आजकलके पाश्चात्य उपवास-चिकित्सक अपने रोगियोंको कराते हैं। मुसलमानोंमें रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्म्मग्रन्थके आज्ञानुसार बराबर रोजे रखने पड़ते हैं। प्रत्येक दिन वे बहुत सवेरे सूर्योदयसे पहले भोजन कर लेते हैं और सब दिन भर कुछ नहीं खाते, रोजा सूर्यास्तके बाद ही खुलता है। ईसाइयोंके धर्म्मग्रन्थोंमें भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है। वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही खाते हैं और बहुधा कई कई दिनों तक उपवास करते हैं। तात्पर्य यह कि सभी प्राचीन और अर्वाचीन धर्मोंमें उपवासका विधान है और उनके ग्रन्थोंके अनुसार शरीर, मन और आत्मा तीनोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक है।

जो ग्रन्थ बहुत [illegible] पड़े हुए हैं उनमें अवश्य ही उपवासकी आज्ञा नहीं है और इसके [illegible] भी बहुत [illegible] है। बहुत प्राचीन कालमें, जब कि मनुष्य [illegible] करता था। [illegible] था। [illegible] मनुष्य जातिमें

अधिक भोजन करनेका रोग बहुत बादमें फैला है । पर प्राचीन कालमें प्रायः सभी देशोंके लोग विशेषतः धर्मिष्ट लोग बहुत थोड़ा भोजन करते थे और प्रायः लंबे चौड़े उपवास किया करते थे । किसी देश और किसी धर्म्मके साधु, सन्त और महात्माको लीजिए, उसके सम्बन्धमें यह बात अवश्य प्रसिद्ध होगी कि उसने इतने दिनोंके और इतने उपवास किए थे । भारतके प्राचीन ऋषियोंकी तपस्याका उपवास एक प्रधान अंग था । बड़े बड़े धर्म्माचार्य्य स्वयं बहुत दिनों तक उपवास करके अपने अनुयायियों और भक्तोंको उसके लाभ बतलाते थे और स्वयं उनके आदर्श बनते थे । पर आजकल जो लोग धार्मिक दृष्टिसे उपवास करते हैं, प्रायः सभी देशोंमें उन्हें धर्म्मान्ध बतलाया जाता है और उनकी हँसी उड़ाई जाती है । इसका कारण यही है कि आजकल लोग प्राकृतिक नियमोंसे एकदम अनभिज्ञ हो गए हैं । जो लोग अन्नको ही प्राण समझते हैं उन्हींकी आँखें खोलनेके लिए उपवासके सिद्धान्तोंका फिरसे प्रचार होने लगा है ।

इतिहास और उपवास ।

किसी देश और कालके इतिहासमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो उपवास-सिद्धान्तके बड़े समर्थक और पोषक हों । भारतीय इतिहास तो ऐसे लोगोंसे भरा ही पड़ा है, अन्य देशोंमें भी ऐसे लोगोंकी संख्या कम नहीं है । अरब देशमें एक बहुत बड़ा चिकित्सक हो गया है जो बिना किसी प्रकारके औषधि-प्रयोगके चिकित्सा करता था और [illegible] रोगियोंके बिस्तरोंके पास केवल इसी लिए पहरा दिया करता था कि जिसमें वे कुछ खा न लें । ईसाई पादरी और धर्म्माचार्य बहुधा लगातार [illegible] निराहार [illegible] और चले जाते थे । और बिना [illegible] आहार न करते थे । मठ-भंग होनेके बदले वे एक दाना भी मुँहमें न डालते थे और [illegible] बाद भी उन्हें इतनी [illegible] [illegible] पैदल चलकर अपने अपने मठ तक पहुँच जाते [illegible] महात्मा [illegible] भी [illegible] । पर महात्मा उनके [illegible] हुए हुए [illegible] अपने जीवनका अन्त कर देना [illegible] बल प्रकारका अन्नत्यागको तो

उसने उचित न समझा, पर वह एक पहाड़की चोटीपर चला गया और वहाँ पहुँचकर उसने अन्न जल छोड़ दिया। उसे आशा थी कि इस प्रकार बिना अन्न-जलके रहनेसे उसके प्राण अवश्य निकल जायँगे। पर उसकी यह आशा पूरी नहीं हुई और वह बिना अन्न जलके सत्तर दिनों तक जीता रहा। इतने दिनोंमें उसका दुःख भी कम हो गया और उसके मनमें ज्ञान भी उपजा। इकहत्तरवें दिनसे उसने एक एक तोला भोजन करना आरम्भ किया। इसके बाद उसका स्वास्थ्य पहलेकी अपेक्षा बहुत सुधर गया। वह चौदह वर्षोंतक जीवित रहा और उसने अनेक मठ आदि स्थापित किए। आजकल भी यह देखा गया है कि खानोंमें काम करनेवाले कुली केवल पानी पीकर ही आठ दस दिनों तक रहते हैं और बिना अन्नके बराबर काम करते रहते हैं। बहुतसे मल्लाहोंने बिना भोजनके गरमसे गरम देशोंमें आठ आठ और दस दस दिन बिता दिए हैं।

पशु और उपवास।

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हम सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें ज़रासा बीमार समझकर ही किसी पशु-चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्रायः सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होने पर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर बिना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केंचुल बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहारके ही रहा करते हैं। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण [illegible] वह [illegible] और जल्दी हो जाता है [illegible]

जाता है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीको दस बीस दिनोंतक बिना भोजनके रख सकता है; पर किसी डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्रायः हकीमों और वैद्योंके ऐसे कृत्योंपर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार न दिया जायगा, तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह नीरोग होनेके बदले मर जायगा। पर उनका यह मत गवेषणामें ठीक नहीं उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उपवास और फलाहारका परिणाम कितना लाभदायक है। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करानेवाले वैद्यों और हकीमोंकी निन्दा करने और हँसी उड़ानेवाले डाक्टर भी कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोंमें अपने रोगियोंको आठ आठ और दस दस दिनतक बिना भोजनके ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास।

इस अवसर पर यह बतला देना भी अनुचित न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र आयुर्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और इसके क्या क्या लाभ बतलाए गए हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदका मत है, कि शरीरमें कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ हैं। जब तक ये तीनों पदार्थ समान परिमाणमें रहते हैं तब तक मनुष्य नीरोग रहता है, पर जब इनमेंसे कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है, तब उसकी विषमतासे रोग होते हैं, अर्थात् उसके कारण मनुष्यके शरीरमें कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। वह रोग बहुत ही छोटा भी हो सकता है और भयानक भी। यही कारण है कि [illegible]

जाने पर वह बिना भोजनके नहीं रह सकता। यह बात वैद्यकके कई ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लंघन करनेसे दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हलका हो जाता है और भूख बढ़ती है। जब कि दोषोंहीसे रोगोंकी सृष्टि होती है और लंघनसे दोषोंका नाश होता है तब इस सिद्धान्तके माननेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि लंघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतने यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामें न हो, लंघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोषोंका परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थान पर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है तब उसकी आहार पचनेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तकी पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इस वचनसे भलीभाँति हो जाती है–"आहारं पचति शिखी दोषानाहारवर्जितः।" अर्थात् आहारको अग्नि पचाती है और जब पेटमें आहार नहीं रहता तब वह दोषोंको पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहनेसे दोषों या रोगोंका नाश ही होता है; निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोष साधारण या मध्यम अवस्थामें हो तो लंघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लंघनके द्वारा वायुका दोष सात दिनमें, पित्तका दोष दस दिनमें और कफका दोष बारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोषकी भयंकर अवस्थामें उक्त ग्रन्थके कर्त्ताने लंघनकी आज्ञा नहीं दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्त पर किसी प्रकारका दोष नहीं आ सकता। कोई दोष आरम्भ होते ही महाभयंकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामें ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगता है। यदि दोषके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय तो निश्चय है कि उस दोषका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हल्का करनेवाली सभी क्रियाएं लंघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और पाचन वायुसेवन और व्यायाम आदिको भी लंघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें बहुतसा अन्न हो और उसको वमन या विरेचनके द्वारा बाहर निकाल दें तो उसको :

लंघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। व्यायाम और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अंतर्गत माननेसे लंघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि वह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लंघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लंघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्तने कहा है कि नवीन ज्वरका क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरम्भमें लंघन करावे। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरूहवस्ति (इन्द्रियजुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी संशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये संशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं, पर उपवासको शास्त्रमें इन संशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भट्टने कहा है कि दूषित वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसर पर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास-चिकित्साका आविष्कार किया है वे उपवास-कालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास-कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उसमें गम्भीर दोषोंका भी उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है। [illegible] कि लंघन इस प्रकार करावे कि

जिसमें बलका नाश न हो; क्योंकि आरोग्यता बलके ही अधीन है और यह सब कार्यक्रम आरोग्यताके लिए ही है। उपवासचिकित्साके आविष्कर्त्ताओंका भी ठीक यही सिद्धान्त है। सारांश यह है कि उपवाससम्बन्धी सिद्धान्त न तो हमारे आयुर्वेदके लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँके उपवाससम्बन्धी सिद्धान्तोंके किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेदसे पाश्चात्य डाक्टरोंके उपवास-सिद्धान्तोंका सब प्रकारसे समर्थन और पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास।

पश्चिममें उपवास-चिकित्साका आविष्कार, बल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगोंने किया है जो अपने जीवनके आरंभ-कालमें बहुत ही दुर्बल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह तरहकी दवाइयाँ करके अपने जीवनसे एकदम निराश हो चुके थे। उन लोगोंने जब देखा कि ओषधियोंसे रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि ओषधिसेवनसे रोगोंकी संख्या और भी बढ़ती है तब उन्हें किसी ऐसी चिकित्सा-प्रणालीकी चिन्ता लगी जो मनुष्यके लिए बिलकुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें लाभके सिवा किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना न हो। उन लोगोंने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूँढ़ निकाली। ज्यों ज्यों उनकी प्रणालीका प्रयोग होता गया और ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता गया त्यों त्यों उन्हें इस बातके दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तवमें रोगोंका सबसे अधिक कल्याण केवल उपवाससे ही हो सकता है। अब तो यूरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल-चिकित्सा आदिसे ही रोगीको चंगा किया जाता है। बम्बईमें डाक्टर बरजनजी फीरोजशाह मादनने भी इसी प्रकारका एक चिकित्सालय खोला है। इन चिकित्सालयोंमें रोगी पर जो अनुभव किये गये हैं उन्हें जानकर बड़ा ही कुतूहल और आनन्द होता है।

साधारण समझका आदमी भी यह बात भली भाँति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेषतः रोगीको भूख न हो तो जबरदस्ती खिलानेसे शरीरका बहुत अनिष्ट होता है—उसे बड़ी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अजीर्ण आदि बहुतसे रोगों और यहाँ तक कि मानसिक चिन्ताओंके कारण भी मनुष्यकी

शरीर और उपवास।

शरीर-शास्त्र वेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए हमें शरीरकी जीवन-शक्ति पर हमें उतना ही बोझ डालना चाहिए जितनेसे हमारे शरीरका काम भली भाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्महत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रतिके कामकी बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओंको लीजिए। अपने शरीरको थोड़ी देरके लिए रसोई-घर समझ लीजिए और पक्वाशयको रसोइया मानिए। यदि आँधी चलनेके कारण रसोईघरमें बहुतसी धूल और गर्द भर जाय, उसकी दीवारकी दो चार ईंटें निकल जाएँ, छप्परका कुछ अंश टूटकर गिर पड़े अथवा इसी प्रकारका और कोई व्याघात उपस्थित हो तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोई-घरको झाड़ बुहारकर गर्द और धूलको साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अंशोंकी मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य बना देंगे अथवा तुरन्त रसोइयेको आज्ञा देंगे कि वह उस टूटे फूटे और गन्दे स्थानमें ही तुरन्त आपके लिए रसोई बनावे? उस समय आप भंडारमें रक्खे हुए सत्तू, चने, गुड़ या मिठाई आदिसे अपना काम चला लेंगे या रोजकी तरह बढ़िया दाल, भात, कढ़ी, तरकारी, चटनी और रोटी आदिकी आज्ञा देंगे? हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रकृति हमारी सब आवश्यकताओंको समझती है और उसकी पूर्तिके उपाय वह पहलेसे ही कर रखती है। हमारे शरीरके भीतर चर्बी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और संकटके समय बड़ी सरलतासे हमारे पक्वाशयकी प्रधान आवश्यकताको पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समयकी बात जब कि हमारी हाज़मेको और कामोंसे छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँच कर अपना नित्यकृत्य करनेके लिए तैयार बैठा हो। रोग और व्याधि आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषोंके नष्ट करनेमें ही लगा देनी पड़ती है। उस समय यदि हम उससे कोई और काम लें तो उसका बल किसी दूसरी तरफ लगानेसे यह कब सम्भव है कि वह हमारे शरीरके दोषोंको बाहर निकालने या नष्ट करनेमें समर्थ होगा। उस अवस्थामें हमें यह उचित है कि

शारीरिक बल और उपवास।

जो लोग सैकड़ों पीढ़ियोंसे दिनमें तीन तीन और चार चार बार भोजन करते आये हों और एकाध दिन भोजन न मिलनेके कारण जिनका शरीर एकदम शिथिल पड़ जाता हो, उनके मनमें उपवासके सम्बन्धमें तरह तरहकी शंकायें उत्पन्न होना बहुत ही स्वाभाविक है। जिस युगके लोग अन्नको ही प्राण मानते हों उस युगमें लोगोंको पखवाड़ों बल्कि महीनोंतक निराहार रहनेके गुण सहजमें नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लोगोंको तरह तरहकी शंकायें हो सकती हैं और इस पुस्तकमें उन शंकाओंका समाधान होना बहुत आवश्यक है। इस स्थल पर उन्हीं शंकाओं पर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हजारों आदमियोंको बिना अन्नके भूखों मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्बन्धमें सबसे पहले यही शंका हो सकती है कि बिना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरनेमें जो अन्तर है उसका यहीं बतलाना उचित जान पड़ता है। पहले बतलाया जा चुका है, कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें बहुतसा ऐसा सामान भर रखा है, जो विशेष आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तब हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें नवरात्र आदिके समय बहुतसे लोग नौ नौ दिन तक बिना अन्न और [illegible] रह जाते हैं। अन्ततक लोग इससे भी अधिक दिनों [illegible] रहते हैं। [illegible] उनके शरीर [illegible] जाता है, चेहरा [illegible] और [illegible] बैठ जाता है। इस [illegible] मुख्य कारण यही है कि उनके [illegible] फालतू सामान उनके [illegible] लग जाता है। फालतू चीजोंके खतम हो [illegible] शरीरका पोषण [illegible] होने लगता है जो हमारे शरीरके आवश्यक अंग [illegible] जिनसे हमारा [illegible] संगठित हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है [illegible] शरीरके फालतू अंशोंका [illegible] बहुत बाद [illegible] अंश भी [illegible]। जब तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक

अंशोंसे पोषणका आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणके रस जानेके उपरान्त उसके शरीरकी दशा [illegible] रहती है। उपवासकाल उसी समय तक माना जाता है जब तक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थों पर होता रहे; पर जब आवश्यक अंशोंकी नौबत आ जाय तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखों मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ कि केवल दो तीन दिनतक अन्न न मिलनेके कारण ही कोई मनुष्य मर गया हो। अभ्यासके कारण मनुष्यको नियमित समय पर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपसे बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उसके साथ रोग, विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और इसके परिणामस्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाते हुए कहा है कि—“उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखसे होता है और भूखों मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेसे होता है।”

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरकी बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी। युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे लोगोंने केवल उपवासकी सहायतासे अपनी बहुत सी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमें ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है पर उससे शरीरको लाभ ही होता है हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है

कि उपवासकालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ जाता है। स्वयं डाक्टर मैकफेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, वह प्रभाव जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बल पर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे ज़मीन पर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियों पर उन्होंने ढाई मन वज़नके एक आदमीको खड़ा करके लेटे लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्रायः तीन ही चार इंच ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियों पर खड़ा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंकी पूरी ऊँचाई तक—छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक—उठ गया। उपवास ही डाक्टर महाशयने उपवासकालमें व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आध मन वज़नका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, पर इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबेल सिरसे ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई तक कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास।

कुछ लोगोंको यह शंका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका ह्रास अवश्यम्भावी है। पर यह बात भी बिल्कुल व्यर्थ है। डा० एडवर्ड हूकर डेवी [illegible] और [illegible] हैं, कहते हैं कि [illegible] मस्तिष्कका [illegible] है; [illegible] और [illegible] है और [illegible] बहुतसे [illegible] जिसमें [illegible] मनुष्यके [illegible]

शरीरको कलोंका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोंको चलानेवाला प्रधान इंजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौकेमें जा बैठनेसे नहीं। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्ककी और फलतः सारे शरीरकी गई हुई शक्तियां लौट आती हैं और प्रातःकाल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शारीरिक परि-श्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रातःकाल जलपान न करनेवाले लोग जलपान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक, और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे बच रहती है। खेतों और खानों आदिमें कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेटमें थोड़ासा भी भोजन हो और मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक दूसरेके लिए वैसे ही बाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर और गुल। भोजनके कुछ समय बाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिए और मस्तिष्कसे सबसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जब कि पेटको अपनी चक्की चलानेसे फुरसत मिले। अतः यह सिद्ध है कि उपवाससे मस्तिष्कके कामोंमें कोई बाधा नहीं पड़ती बल्कि उलटे और उनमें सहायता मिलती है।

दूर हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी। साधारणतः इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है। पर उस दिन मुझे कोई काम न था, दो चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक ज़ोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनालयमें जानेके विचारसे चल पड़ा। कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनालयमें जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामें चला गया और आध घंटे तक मैंने वहीं खूब कसरत की। उस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखें बहुत धँस गई थीं। पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था। उपवासके पहलेसे तो मैं केवल पचास पाउंडका डंबल ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ तब सत्तर और अन्तमें सौ पाउंडतकका डंबल उठा लिया। उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

मिस हूप नामकी एक महिलाको एक बार लकवा मार गया था। जब अनेक प्रकारके औषधोपचारोंसे उनका रोग अच्छा न हुआ तब अन्तमें उन्होंने बत्तीस दिनों तक उपवास किया, इससे उनका शरीर एकदम निरोग हो गया था। अपने उपवासके सम्बन्धमें वे लिखती हैं —

"उपवासके बत्तीस दिन बितानेमें मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। जब कभी मुझे अधिक भूख मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं [illegible]

[illegible]

उपवास कालमें भयके चिह्न।

साधारणतः उपवास-कालमें किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डा० मेकफेडन और देवर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमेंसे जिन्हें मैंने लम्बे चौड़े उपवास कराये, एक भी नहीं मरा, और प्रायः प्रत्येक दशामें उपवाससे सदा लाभ ही हुआ हानि कभी नहीं हुई। तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हैं उन्हें भयके कुछ चिह्नोंका पालन करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-कालमें कभी तो रोगीकी नाड़ी, बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणतः नाड़ी एक मिनटमें ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है, पर यदि यह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देखरेखमें न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है।

उपवास-कालमें यह विचार मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता। इस विचारके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवास-कालमें बहुधा लोगोंका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने लगती है। बहुतसे अंशोंमें इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है। दुर्बल हृदयके लोगों पर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास-कालमें इस बातकी बहुत बड़ी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमें किसी प्रकारका उद्वेग या चिन्ता न हो। उपवास-कालमें जिन रोगियोंका मन इस स्थितिमें रहता है उन्हें उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत जल्दी नीरोग हो जाता है

उपवासके समय बहुतसे लोग बहुत दुर्बल और कृश हो जाते हैं [illegible] [illegible] बहुत यह दुर्बलता [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

बिस्तर पर पड़े रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड़ देना ही सर्वश्रेष्ठ है। यद्यपि वास्तवमें वह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न हो तो उपवास छोड़ देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा० मैकफेडनके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही आवश्यकतासे अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उप[illegible] वाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवासकालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जठराग्निकी नज़र होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मीलोंके [illegible] टहलने और खूब कसरत करनेके योग्य रहे—उसके शरीरका बल बराबर बना रहे—तब तक उपवास जारी रखना चाहिए, पर जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास छोड़ देना चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भोजन आरम्भ करनेमें भी बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती है। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो उसके टूटने पर भोजन भी उतनी ही [illegible] मात्रामें [illegible] उपवास किस प्रकार तोड़ना चाहिए, इस विषयमें अधिक [illegible] आगे चलकर कहा जायगा। [illegible]

[illegible]

समय होती है जब उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा जाय और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमें यदि भयका कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपैथिक चिकित्सा करनेवाले डाक्टरोंसे सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी बुद्धिसे काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही हमारी सबसे बड़ी रक्षक और शुभचिन्तक है। बहुधा वही हमें समय पर हमारा कर्तव्य बतलाती रहेगी। भयके अधिक चिह्न उसी दशामें उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा। पर साधारणतः कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहिए। सब प्रकारके भयके चिह्नोंसे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य उसका आरम्भ बहुत थोड़ेसे करे। यदि मनुष्यका शरीर साधारणतः स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने यह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल दो साल बाद वह आठ दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणतः स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी बात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमें भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या बेचैनी आदि न हो। यदि मनमें प्रारम्भके पहले घबराहट या बेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाय, तो उपवासकालमें बहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि इस प्रकार रह सकना असम्भव है [illegible] उपवास [illegible] सम्मति भी न [illegible] है

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणतः सब लोगोंको और विशेषत: उपवास कर चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त बीचबीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँके वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें यह बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर-कालमें अपने रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बड़ी भूल है। बहुधा बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोड़े पानीसे बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ही होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त और सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करना चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक सञ्जीविनी शक्ति होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है, हानि नहीं।

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास-कालमें जिसका व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शुद्ध और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी थोड़ी मात्रामें उपवास-कालमें फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकनेकी बात सुन कर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुतसे अंशोंमें हँसीके लायक ही, पर वास्तवमें रेत फाँकनेका शरीर पर बहुत ही अच्छा परिणाम होता है। रेत फाँकनेके गुणोंकी जानकारी पहले पहल बोस्टन नगरके प्रो॰ विलियम विंसलोने प्राप्त की थी। उन्होंने यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्यके अतिरिक्त प्रायः सभी जानवर अपने भोजनमें थोड़ी बहुत रेत सदा और अवश्य लिया लेते हैं। उस रेतसे उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और उसीके कारण भोजन सुगमतासे पैठकर कब्जियत नहीं उत्पन्न कर सकता। स्वयं डाक्टर विंसलोने जब यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था क्योंकि रेतका कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर अब डाक्टर महाशयने लगातार तीन वर्षों तक हजारों रोगियोंके इसका व्यवहार कराया तब उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला

और न वह मरा। इस नियम पर चलनेसे भी ऐसा न निकला जिस रोगके

[illegible]

परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण हम पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियों या रेंड़ीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समय तक स्थायी रूपसे रह कर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत हो तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलतापूर्वक–बिना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये–दूर हो जाती है और उसका मल-मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फैलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल-रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है, जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और उसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग लाभदायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवासकालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीर पर और विशेषतः रोगग्रस्त अंगोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक बार एनिमा से शरीरका आन्तरिक भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेनेसे पेट हल्का और आँतों आदिकी सफाई होती रहती है। अन्दर जल पहुँच और एनिमा लेनेसे उत्सर्जकांगोंका मार्ग बहुत साफ हो

जाती है और उसकी जीभ पर जमी हुई पपड़ी छूट जाती है और उसकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग बालककी जीभकी होती है। साँसमें किसी प्रकारकी बदबू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

कुछ ज्ञातव्य बातें।

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगने पर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है: जहाँ मनकी उपवाससम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी ओषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लन्दनके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अंगमें कुछ पीड़ा जान पड़ी, जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उसकी

मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधों आदिका शरीर पर बहुत ही भयंकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, बहुधा औषध छोड़ देने पर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी बदौलतसे नीरोग हो जाने पर रोगके फिरसे उभड़ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधका सेवन आरम्भ कर दे तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुत ही छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयंकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि हम जितना भी कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा, रोगको ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक थोड़ा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह है कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल पहले दो तीन दिनोंतक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य बड़े सुखपूर्वक रहता है। [illegible] भोजन करनेवालेका [illegible] रहता है। [illegible] भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको [illegible] [illegible]

बड़ा और छोटा उपवास।

उपवास दो प्रकारके होते हैं। एक उपवास तो बहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोंका होता है। जो लोग बहुत दिनोंके उपवासको उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं बतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जबतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे तबतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास-जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशके सामने और सब प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी क्षुधा बिलकुल ही तुच्छ बोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा-मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनोंतकके उपवास किये हैं।

साधारण रायके समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि जबतक रोगका जोर बिलकुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भूख लगे तबतक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगोंकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक या शारीरिक दुर्बलताके कारण अधिक दिनोंतक उपवास न कर सकते हों वे बड़े बड़े उपवास न करके छोटे छोटे उपवासोंसे ही बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि छोटे उपवास करके बिलकुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें बहुत समय लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समयतक विशेष सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवासके गुण और लाभ अप्टन सिंक्लेअरने बड़ी ही उत्तमतासे बतलाये हैं, इस अवसर पर उन्हींका आशय दे देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। आप कहते हैं,—

"बहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनोंतक उपवास करना चाहिए और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अब उपवास छोड़नेका

समय आ गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो बार बारह बारह दिनोंके उपवास किये हैं। दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था इसका कारण यह था कि मैं बारह दिनोंमें ही बहुत दुर्बल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती थी कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सबल हो जाय। यद्यपि उन बारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी कई डाक्टरोंने मुझसे कहा था कि इन बारह दिनोंके उपवाससे ही मुझे बहुत कुछ लाभ पहुँच चुका है। और बात भी वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझमें पाचनशक्तिके मन्द पड़ने, आँतोंमें मल जमा होने, सिरमें दर्द रहने, कब्जियत होने अथवा इसी प्रकारकी और दूसरी साधारण और छोटी मोटी शिकायतोंके लिए दस बारह दिनोंका उपवास बहुत ठीक होता है। पर जिन लोगोंको नासूर, गरमी, बवासीर, गठिया आदि भारी और भयंकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए।

“ यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट बोध न हो तो उसे यथा-साध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगोंको केवल अपनी सामर्थ्य दिखलाने, अथवा कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए। बार बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसीको कई बार बराबर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शरीर-संगठन बिलकुल बिगड़ गया है। ऐसी दशामें उसे सब प्रकारके अनुचित कार्यों और अभ्यासोंको सदाके लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए। जो लोग दुबले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनों तक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमें जितना ही अधिक फालतू द्रव्य संगृहीत होगा वह उतना ही लंबा उपवास कर सकेगा। जब तक मनुष्यको स्वयं यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल बड़े उपवाससे ही लाभ होगा, तब तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपवास न करना चाहिए।

जिसे इस विषयमें तनिक भी शंका हो उसे सदा थोड़े दिनोंका उपवास न करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या संकट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है; अथवा आवश्यकता पड़ने पर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है।"

छोटे बच्चोंके लिए उपवास।

छोटे बच्चोंको उपवाससे इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते। दुधमुंहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४–१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकोंको बहुधा छोटी मोटी बीमारियाँ हो जाया करती हैं। यदि माता–पितामें इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी प्रकारका छोटा मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें तो वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूपसे दूर हो जाँयगे। जुकाम और खाँसीसे लेकर बड़े बड़े भयंकर ज्वरों तक सब रोग इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते हैं।

इस अवसर पर बड़े उपवासोंके सम्बन्धमें यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि **चार छह दिनसे अधिक लम्बा उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषतः उपवास-चिकित्सककी सम्मति और देखरेखके कदापि न करना चाहिए।** क्योंकि कभी कभी उसके सम्बन्धके पूर्ण नियम आदि न जानने अथवा उनका पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है। जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों उन्हें उचित है कि वे किसी उपवास-चिकित्सककी सम्मति लेकर अथवा अपने ही समान किसी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

बालक [illegible] [illegible] होता है कि उन्हें कभी [illegible] [illegible] अधिक [illegible] किसी [illegible] [illegible] उस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कि

वह कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है। इस सम्बन्धमें तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है। क्योंकि इससे बढ़कर आश्चर्य-जनक और रामबाण चिकित्सा हो ही नहीं सकती। जो माता पिता एक दो बार भी इस चिकित्साकी परीक्षा करेंगे वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्यर्थ भय आदि पर हँसने लगेंगे।

पर यदि किसी बालकके रोगी होने पर महीनों तरह तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिलकुल बिगाड़ दिया जायगा और उसे मृत्यु-मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको बचा लेनेकी शक्ति उपवासमें न दिखलाई पड़ेगी। उस दशामें अपनी दुर्बलताका दोष उपवासके मत्थे न मढ़ना चाहिए। हाँ, यदि दूषित उपायोंसे बालकका शरीर बिगाड़ा न गया हो, उसके शरीरमें तरह तरहके विष न भरे गये हों तो अवश्य ही उपवासका चमत्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं बालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता। या तो वह रोग माता पिताके कुपथ्य और दोषों आदिके कारण हो सकता है और या तरह तरहकी ओषधियों आदिकी सहायतासे उसमें आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित भले आदमीकी प्रवृत्ति चोर डाकू या खूनी बननेकी ओर नहीं हो सकती, उसी प्रकार किसी बालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी होनेकी ओर नहीं हो सकती। बहुतसी अवस्थाओंमें तो यहाँ तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न हो, तो आगे चलकर उसका बाल-शरीर ही उस रोगको नष्ट कर देता है। पर दुर्भाग्यवश हम लोगोंको यह मिथ्या भ्रम हो जाता है कि बालकको सदा भोजनकी आवश्यकता बनी रहती है। रोगी होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न आती हो तो थोड़ी अफीम या और कोई नशीली चीज खिला देना चाहिए, आदि आदि। और इसी भ्रमके कारण हम लोग जान बूझकर बालकोंके शरीरको रोगका घर बना देते हैं।

प्रकृति हमें यह बात बतलाती है कि किसी बालकको जन्म लेनेके उपरान्त कमसे कम तीन दिन तक किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। साधारणतः प्रत्येक दाई और माता यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालकको जन्म लेनेके तीसरे दिन दूध पिलाया जाता है।

थोड़ी मात्रामें होता है। पर उसके बाद ही माता या दाई उसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब जब वह रोता है तब तब उसे दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थामें ही बालककी पाचन-क्रिया और शक्ति बिगाड़ दी जाती है। धीरे धीरे बालक पर भूखका अधिकार बढ़ता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी आदत लगा दी जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोड़नेके अतिरिक्त उसे तरह तरहके रोगोंका पात्र बना देती है। छोटे बालकोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो दो घंटोंका अन्तर देकर बहुत ही थोड़ी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए और रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रोता हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पिला देना चाहिए। अधिकांश अवसरों पर बालकका रोना उसी पानीसे ही शान्त होगा और वह तुरन्त सो जायगा। यह बात चाहे साधारणतः लोगोंके मनमें न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पड़ेगा कि इस प्रकार पाले हुए बालकोंमें से ७५ प्रति सैकड़े सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभको काबूमें न रखनेके कारण ही होता है। जिन बालकोंको आरम्भसे ही भूख और जीभको काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी वह बड़ा होनेपर कभी रोगी न होगा।

पर अभाग्यवश आज कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक इस प्रकार पाले जाते हैं। प्रायः उन्हें बार बार और इतना अधिक दूध पिलाया जाता है कि पाचन-क्रियाके प्राकृतिक नियमों और प्रेरणाओं आदिका पूरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक कि जब बालक उनकी समझसे कम दूध पीता है तब वह रोगी समझा जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है, पर जो लोग ध्यान और विचार-पूर्वक उपवासमें होनेवाले लाभोंकी जाँच करते हैं उन्हें तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि बालकोंके प्रायः सभी रोगोंका सम्बन्ध उनके अनियमित और अधिक भोजनसे [illegible] है। वास्तवमें स्वस्थ शरीर कभी रोगी नहीं [illegible] विशेषके कारण [illegible] है [illegible] यह प्रधान [illegible] बालकोंमें

आदिमें कोई सहायता नहीं मिलती । हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर-संगठन और बल-वृद्धि आदिमें बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके बाहर निकाल देता है ।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन-शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और फेफड़ा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है । जिस मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूब कसरत करे । इस अवसर पर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास ही सब रोगोंको नष्ट करनेका उपाय नहीं है बल्कि उसके लिए शारीरिक संयम, खुली हवा, सूर्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है । इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रहनेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ़ निश्चय और प्रसन्नता आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है ।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें ।

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवाससे रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन तक उपवास करें । उस एक या दो दिनमें ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामें यदि अच्छी तरह उनको सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं । अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो तो वे पहले बहुत छोटे छोटे उपवास करें और ज्यों ज्यों उन्हें उनसे लाभ मालूम होते जायँ त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ । [illegible] दिनोंतक [illegible] उपवास [illegible] न मिल सकते हों और जिन्हें [illegible] उपवाससम्बन्धी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए इस [illegible] अवलम्बन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है ।

जिस उपवासके [illegible] पर जमा हुई [illegible]

प्रकट हों जिनसे विषोंके बाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणतः आठ दस दिनके उपवासको योग्य उपवास-चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं। क्योंकि उन आठ दस दिनोंमें भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पाँच ही होते हैं; और ऐसे छोटे उपवास बिना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और न दुर्बलता सदा थोड़ा खानेसे ही होती है, दुर्बलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसर पर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी। जो लोग उपवास पर विश्वास न करते हों अथवा विश्वास करने पर भी जिनमें उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें, तदनन्तर वे चार दिन बिना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रक्खें। इसमें सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जायंगे और वे बिना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास-कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी बहुतसी आवश्यक और जानने योग्य बातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमें सब प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे। इस अवसर पर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवास-कालमें कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए, नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसर पर किया जा सकता है। एक साधारण मनुष्य जब चाहे तब एक या दो समयका भोजन

जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्ति पर उसके लिए एक दममें भारी या अधिक भोजन पचा लेना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी भागमें निकलनेवाले पाचक रसोंकी मात्रा चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती है। इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन करते हैं, पर तो भी सर्व साधारणको इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंको उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचगी। उपवास छोड़नेके पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और मसाले कम हो। भोजके स्वाद अथवा और [illegible] कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवास-चिकित्सालयोंमें जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलोंके रस ही देते हैं और तब उसके बाद तीसरे दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो दो घंटे पर और चौथे दिन एक एक घंटे पर एक गिलास दूध दिया जाता है। पाँचवें और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों ज्यों उपवास करनेवालेकी [illegible] बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसे अधिक दूध [illegible] जाता है [illegible] बढ़ानेसे तीसरे दिन [illegible] बहुत [illegible] [illegible] दिनमें केवल दो [illegible] मात्राएँ तीसरे [illegible]

[illegible] वह [illegible] बहुत [illegible] इच्छा [illegible] प्रकार

बहुत अधिक भूख लगने पर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनोंतक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहों तक रहना चाहिए।

डाक्टर हरवर्ड केरिंगटन उपवासचिकित्साके बहुत बड़े ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थान पर उसका अनुवाद दे देते हैं:—

"उपवास छोड़नेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोड़नेमें किसी प्रकारकी असावधानी की जायगी तो उपवासके उत्तम अधिकांश लाभ प्रायः बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवास-सम्बन्धी विशेष अनुभव है वे यह बात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोड़नेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाता हूँ।

"उपवाससम्बन्धी सबसे बड़े इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि प्रकृति हमें स्वयं यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए। इस सम्बन्धमें हमारे शरीरमें कुछ विशेष और स्पष्ट चिन्ह प्रकट होते हैं जिनमेंसे कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है,—

(१) उपवासकालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाती है, वह उपवास छोड़नेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवासकालमें जीभ पर जो परत जमी होती है वह धीरे धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवासकालमें बड़ी अधिक दुर्गन्धसे भरा पसीना निकलता है, पर उपवास छोड़नेका अवसर आने पर वह अपने नियमित रूपसे बहने लगता है।

(४) उपवासकालमें जो साँस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होने पर बिलकुल साफ और [illegible] दुर्गन्धहीन हो जाता है।

" इस अवसर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हों तब तक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवाससमाप्तिके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा ? इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है। जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे। बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समय तक मनुष्यका शरीर धीरे धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग जाती है।

" जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मानमें घटते हैं—

चर्बी ....९७ भर
स्नायु (Tissuese)...३० "
कलेजा (Liver) ..५६ "
तिल्ली (Spleen) ...५२ "
और खून केवल ......१७ " नष्ट होता है।

" ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) का कोई अंश नष्ट नहीं होता। इस कथनके प्रमाण शरीर-शास्त्रके प्रत्येक प्रामाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं।

" ऊपरके लेखोंसे इस बातका पता लग जाता है कि उपवास-कालमें शरीरका वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है, जिसका उपयोग हमारे शरीरके [illegible] लिए बहुत ही कम होता है। यह अंश चर्बी है। इसके अतिरिक्त [illegible] और भी अनेक [illegible] पदार्थ होते हैं, जिनको उपवास-कालमें शरीरका [illegible] है और वही शरीरके [illegible] करता है।

" [illegible]

निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीरके लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझमें उपवास छोड़नेके समय इस प्रकार भोजन आरम्भ करना चाहिए:—

"**पहला दिन**—जब उपवास छोड़नेका समय आवे और उसकी समाप्तिके सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करनेवालेको एक गिलास सन्तरेका पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढ़ा हो तो उसमें थोड़ा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकारके और दूसरे फलोंका रस भी लिया जा सकता है, पर वह रस न तो बहुत ठंडा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

"**दूसरा दिन**—रोगीको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पेटमें अधिक पदार्थ न चला जाय, क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और भीषण रूप धारण कर लेती है। उस समय इच्छा और भूखको वशमें रखनेकी बहुत आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रक्खी जायगी तो परिणाम बहुत ही भयंकर होगा।

"दूसरे दिनके लिए सबसे अच्छी खोराक सन्तरा है। खजूर और अंजीर आदि और अखरोटों पर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोड़नेके समय उनका व्यवहार करनेकी सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक ही फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाय तो एक और खा लेना चाहिए—इससे अधिक नहीं।

"**तीसरा दिन**—उपवास छोड़नेके दो ही तीन दिन बाद तक बहुत सावधानीकी आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिन पर दिन भोजन बढ़ाया जाय तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोड़ी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रामें भी कम होना चाहिए।

"उपवास छोड़नेके उपरान्त बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभदायक होता है। उपवास छोड़नेके दूसरे दिन जो दूध पीया जाय वह इतना ही गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक एक घूँट करके और बहुत धीरे धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पीया जा सकता है। तीसरे दिन हर घण्टे पर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढ़ता है और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है, हानि कभी नहीं होती।"

आनन्दपूर्वक भोजन करते थे । दिन भर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे । उनका रूखा-सूखा, हलका और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था,-रोग, आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कलके सुलेमानी नमक और हिंगाष्टककी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी । उन लोगोंका मुख्य भोजन आठ पहरमे केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आज कलके लोग 'जलपान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और फलतः प्रवृत्तिको भी दबा लेती है । आप दिन भरमें पसेरी भर अन्न भी सत्यानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेरमें भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यासकी । यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे । यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी थोड़ी देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो दो या तीन तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईवाला बालक-चाहे बीमार ही क्यों न हो जाय-हर दम दूधके लिए रोया करेगा; पर जिस बालकको नियमित रूपसे छः या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा । इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रकृति, इच्छा और सहज-बुद्धिका नाश हो जायगा, और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा । उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा ।

बहुधा हम लोग देखा देखा करते हैं कि नागरिकोंको देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी-चीनी, पूरी-पकवान, मेवा-

मिठाई, मांस-मछली और पूआ-पकौड़ी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्बल ही बने रहते हैं। लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोग और हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो एक नागरिकोंको बड़े आनन्दसे बगलमें दबाकर कोस दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमें रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समय तक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रातःकाल चार बजे उठकर अपनी गौओं-भैंसोंके सानी-पानीका सब प्रबन्ध करेगा और ग्यारह बारह बजेतक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी दूध, मक्खन, खोआ आदि बेचनेके लिए चार गाँव कोसके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। रास्तेमें ही वह थोड़ेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोड़ी देर तक सुस्तानेके बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रममें लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे खूब तेज भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पच कर हमारे शरीरमें लगेगा और हमारे अंगप्रत्यंगको पुष्ट करेगा। शहरके रईसोंके सवेरे उठते ही स्नान आदिसे निश्चिन्त होकर जलपान पर टूटें, मानों रात भर उन्होंने फाके ही किये हों। जलपानके उपरान्त वे हाथमें या तो ताश, अखबार या किताब आदि उठा लेंगे और या अपने महलसे [illegible] अपनी दूकान पर जा बैठेंगे। ग्यारह बजे जब वह [illegible] हुए होंगे कि [illegible] कुछ भूख [illegible] नहीं मालूम पड़ती [illegible] [illegible]। [illegible]

[illegible]

बहुत अच्छी तरह इसका अभ्यास कर सकते हैं और बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक सहजमें इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० लिट्न नामक एक विद्वान् अपने बालकोंको दिनमें कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्रायः कहा करते थे कि बिना दिन भर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका बिना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजनके अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो अधिक भोजन करके ही अपने शरीरको रोगी बनाते हैं दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है। एक बार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तरह पीड़ित हुए। सात महीने तक डाक्टरोंने उनका शरीर दिनमें तीन बार भोजन, छः बार औषध और कदाचित् इससे भी अधिक बार दूध, और बिस्कुटोंसे खूब भरा। यहाँ तक कि अन्तमें वे सूख कर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको चले गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेंट एक योग्य उपवासचिकित्सकसे हो गई। उपवास-चिकित्सकने उन्हें दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन देना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें उनकी सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत हृष्टपुष्ट हो गये और तौलमें आध मन बढ़ गये। वहाँसे नीरोग होकर वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन रातमें केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे चार वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लोग भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमें एक बार डा० रैवेन्टेनने एक ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था जिसकी अवस्था चार वर्षकी थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयंकर Tuberculosis हो गया था। इस बालिकाको दिन रातमें चार बारके बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा [illegible] और उसको [illegible] दूध [illegible] दिया जाता था। इस बालिकाके और भी कई भयंकर [illegible] थे। पर [illegible] उसके सब [illegible] हो गए और वह [illegible] [illegible] [illegible]

योग्य है कि Tuberculosis एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्रायः असम्भव समझा जाता है और जो रोगीके प्राण बिना लिये छूटता ही नहीं।

इंग्लैण्डमें एक बार एक स्त्रीके गर्भमें पथरीकासा एक रोग हो गया और उसमें कई सेर तौलकी एक गाँठ पड़ गई। उसका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया था, शरीर सूखकर काँटा हो गया था, दिनरात सिरमें दर्द रहता था, कब्जियत थी, कै आती थी और इसी तरहकी बीसियों शिकायतें थीं। शस्त्र-चिकित्सा करके उसके गर्भकी गाँठ तो निकाल दी गई थी, पर उसकी दुर्बलता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थीं। जब उसके बचनेकी कोई आशा न रही तब उसे दिन रातमें दो बार भोजन दिया जाने लगा। पर जब उससे कुछ लाभ न हुआ तब केवल एक बारके भोजनकी ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें दूर होनेके सिवा छः सप्ताहमें उसका वजन तीन सेर बढ़ गया। जुलाई १९०१ में उसकी अस्त्र-चिकित्सा हुई थी और दिसम्बरमें वह पूर्णरूपसे नीरोग और अपने सब काम करनेमें समर्थ हो गई थी। यदि वह औषधों और भोजनके सहारे ही रक्खी जाती तो इसमें कोई सन्देह नहीं था कि वह उन्हींका शिकार बन जाती।

जलपान न करना।

यदि आरम्भमें ही आप एक दमसे दोपहरका भोजन न छोड़ सकें तो कमसे कम सबेरेका जलपान या कलेवा करना अवश्य छोड़ दें। इससे होनेवाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ कम नहीं है। इस अवसर पर हम अपनी ओरसे कुछ अधिक न कहकर प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डेवीके अनुभवका सारांश यहाँ पर दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आपने लिखा है—

"जिस दिन मैंने पहलेपहल जलपान छोड़ा था उस दिन मेरा शरीर और मन इतना हलका और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्थामें भी नहीं हुआ था। दोपहरके समय खूब भूख लगने पर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन किया। उस समय भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ता था। लगातार सात वर्ष तक कलेवा करने पर भी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। सोकर उठते ही

दिया नहीं है, जिससे कि उसको खानेहि पर ही भूख लग आवे। हजारों ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना प्रातःकालका जलपान छोड़ दिया है और थोड़े ही दिनों बाद जिन्हें कभी उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी। यदि जलपान आवश्यक होता तो यह बात कभी न होती; क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकताको पूरा किये बिना कभी नहीं मानती। यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको बिना पूरा किये ही अथवा थोड़े भोजन पर ही हमारे शरीरको बिलकुल ज्योंका त्यों बनाये रखे। जो जलपान तुम बिना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके कारण करते हो, वह बड़ी सरलतासे तुम्हें उसके छोड़ देनेकी आज्ञा दे सकती है। पर यदि तुम उसकी आवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे चलकर तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

"जलपान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब तक कभी कुछ मत खाओ। जब तुम इस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य ही वह अपने समय पर उचितरूपसे मालूम पड़ेगी। उस अवसर पर तुम स्वयं ही यह निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितनी खानी चाहिए। जब तक भोजनकी पूरी पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक और स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब स्वादिष्ट मालूम होनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थोंको बहुत अच्छी तरह चबाने और पाचनके समय मनके खूब शान्त रहनेकी आवश्यकता होती है।

"बिना जलपान किये अपने काम पर जाओ, दोपहरके भोजनके समय तुम्हें खूब तेज भूख लगेगी। इतनी तेज भूख लगेगी कि यदि तुम भोजनके पहले किसी प्रकारका

यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रात कालका जलपान करना छोड़ देगा तो उसमें होनेवाले लाभोंको देखकर सम्भवतः परिवारके और लोग भी बहुत ही शीघ्र अपना अपना जलपान छोड़ देंगे। जलपान न करनेवालोंका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, उन्हें जल्दी कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती। अमेरिका-वालोंकी देखादेखी युरोपवाले भी जलपान न करनेके गुण समझने लगे हैं। अभी हालमें इङ्गलैण्डमें एक स्वास्थ्यसंवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जलपानकी प्रथा रोकना है। जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उस दिन उसमें नगरके बहुत बड़े बड़े अधिकारी, डाक्टर और विद्वान् इकट्ठे हुए थे। यह सभा इङ्गलैण्डके मैनचेस्टर नगरमें हुई थी। उस अवसर पर वहाँके 'मैंचेस्टर गार्डियन' नामक प्रसिद्ध पत्रने लिखा था—' आज मैंचेस्टर नगरमें पहले दिनोंकी अपेक्षा [illegible] जलपान कम हो जायेंगे और यहाँकी स्वास्थ्यसभा थोड़े ही वर्षोंमें अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगा। सम्भवतः उसकी देखादेखी 'जलपान' का निषेध करनेवाली [illegible] स्थापित होंगी। लोगोंका बहुत सा समय केवल जलपान [illegible] है। स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढ़ाने और [illegible] अच्छा और कौनसा काम हो सकता है? [illegible] और [illegible] अच्छा और कौनसा उपाय हो सकता है? [illegible] अधिक उपकारक और कौन सी बात हो सकती है? यदि प्राकृतिक नियमोंका पालन किया जाय और अपने शरीरको [illegible] दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी शक्ति सम्पन्न [illegible] कर लेगा। और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है। यह [illegible] कोई [illegible] नहीं है, बल्कि हमारे [illegible] है। इस [illegible] उन पुराने हुए [illegible] होगा, जिनके कारण शरीर-[illegible] पड़ते हैं।"

[illegible] डाक्टर—[illegible] इंग्लैंडके [illegible] चिकि-त्सकका [illegible] है—[illegible] एक पुस्तक लिखी है। [illegible] " अमेरिकाके [illegible] लिखा है, [illegible] है कि [illegible] है और

कदाचित् यहाँ इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता न होगी कि मांस खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उग्र उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलतः वे लोग क्रूर, निष्ठुर और अत्याचारी हो जाते हैं। मांसाहारियोंके कारण दूसरे मनुष्यों और जीवोंको बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और तोते, पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मांसाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है, अन्यथा यह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मांसाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखनेके लिए ही मांसाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक बार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी आर्ष ग्रन्थका इस आशयका एक मंत्र सुनाया था कि सृष्टिका यह परम्परा-गत नियम है कि 'चार पैरोंवाले दो पैरोंवालोंके खाद्य और दो पैरोंवाले बिना हाथ-पैरवालोंको खायँ।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सबल अपनेसे निर्बलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंमें भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। वे लोग दुर्बलताको महान् पाप समझते हैं और उसीको समाप्त करना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विचारवान् बिना किसी प्रकारका [illegible] और [illegible] यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार [illegible] बिना किसी प्रकारका सन्देह नहीं करेगा [illegible] मनुष्यके [illegible] इसके समर्थन [illegible] विचारकोंके [illegible] उन पर दया और [illegible] और [illegible] अधिकार [illegible] है [illegible] और [illegible] [illegible] है [illegible] पड़ता है प्रत्येक [illegible] [illegible]

देगा। कुछ लोग केवल संग साथके विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं, पर केवल संगसाथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार करना—जो हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाशक हों, जिनसे हमारे जीवनकी उपयोगिताका नाश हो और जिनसे हमारे कर्त्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग कोई बड़ा काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी लेते हैं कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फुर्ती आ जायगी और वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी शीघ्रता और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दूसरे पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक सरीखे नाशक पदार्थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब बातोंके अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। शराब पीनेवालोंका जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस आदि पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियोंकी आँतें बेकाम हो जाती हैं और भाँगका आँखों पर बहुत ही नाशक प्रभाव पड़ता है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं, वे सब विष हैं और विष सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे, उनसे किसी प्रकारके हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान पानके विचारके अन्तर्गत मांस और मादक पदार्थ आदि छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं जिनका ध्यान रखना स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पहली बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्यको सादा, सूखा और हलका भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सबसे अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें उन्हीं पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं। शेष सब पदार्थ हम चाहे उन्हें कितना ही अधिक पौष्टिक क्यों न समझें हमें कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। वे तो एक मार्गसे हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं हमारे शारीरिक संगठनमें उनसे कुछ सहायता नहीं मिलती। हम पान और खुराक केवल पौष्टिक उतना

लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूधके पच जानेसे होता है। अतः केवल बल-वृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थोंको बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हलके भोजनका सेवन इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पचन-शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड़ जाती है। पूरियों और पकवानोंकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, [illegible], पक्वान्न और हलुए आदिसे भी पचन-शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ-पूरी खानेवाले भोजनके समय एक घण्टेमें चार पाँच पूरियोंसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भुने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उससे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग सदा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसाले अथवा औषधि भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके संयोगसे खाद्य पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोंका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने प्राकृतिक स्वरूपमें हों अथवा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन हुआ हो। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्तन किया जायगा उसके गुणोंका उतना ही अधिक नाश भी होगा। दररोज पके हुए [illegible] व्यवहार [illegible] करते हैं [illegible], पर इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि [illegible] जितना [illegible]

पर क्या मच्छड़ोंके डंक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छड़ोंने जाकर अल्लाह मियाँसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमें बहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियाँने जब हवाको बुलवाया तो मच्छड़ वहाँसे भी भाग गये। हवाके वहाँसे चले जाने पर मच्छड़ फिर रोते हुए अल्लाह मियाँके पास पहुँचे। उस बार अल्लाह मियाँने मच्छड़ोंको बहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जब मुद्दई और मुद्दालेह दोनों मौजूद हों, जब तुम हवाके आने पर यहाँ ठहरते ही नहीं, तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छड़ोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले रोगियों और डाक्टरों तथा मच्छड़ोंके डंकसे बचनेकी इच्छा रखनेवाले लोगोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अब सुन लें और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ लें कि मच्छड़ोंको दूर करनेका सबसे सहज उपाय है—बढ़िया ठंडी और तेज हवा। मकान ऐसे बनवाइए जिनमें हर तरफसे बढ़िया हवा आती हो। फिर क्या मजाल है मच्छड़ आपको काटें या दूसरोंके रोग लाकर आपको देवें।

बरसाती मच्छड़ोंसे जुकाम और खाँसी और इनसे पीड़ित रहनेवाले लोग वहीं अधिक समय तक भागी और टट्टी हवाने लगेंगे। अन्दाज करें तो बहुत गड़बड़ी और [illegible] इसका छुटकारा हो जाय [illegible] हवा [illegible]

[illegible]

कभी लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए कन्दलके कारण वे देहातोंमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोड़ासा भी प्रयत्न करें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा कहीं और पौष्टिक पदार्थोंसे बहुत विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं आदिके देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि जिन्होंने उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

इतने अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि जब वह स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि बन्द ही मिलेंगे, चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़े बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढ़नेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या ओढ़नेके अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा साल में छः सात महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए रातको छाता लगाकर सड़कों पर चलते और कनटोपियाँ लगा कर लेते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। [illegible]

युरोप [illegible] और [illegible] युरुमें लोगोंके [illegible]
य [illegible]
गन्दी [illegible]
कुछ [illegible]
क्या कुछ [illegible]
कारण ही वायु [illegible]
[illegible]

करनेके लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए धन्धेके कारण वे देहातमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोड़ासा भी प्रयत्न करें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक औषधोंकी अपेक्षा कहीं और दैविक पदार्थोंसे बहुत विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओंको देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि एक दिनके उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

बहुतसे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि जब वह स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि बन्द ही मिलेंगे, चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़े बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढ़नेके अन्दर मुँह ढँक कर सो रहते हैं। रातभर वे उसी लिहाफ या [illegible] अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छः सात महीने बराबर रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए रातको छाता लगाकर सड़कों पर चलते और मसहरियाँ लगा कर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

यूरोप और अमरीका आदि देशोंमें जाड़ेके मौसिमके समय मकानकी सारी खिड़कियाँ और दरवाजे [illegible] और भी अधिक [illegible] है। [illegible] [illegible] देश [illegible] [illegible] दरवाजे [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] एक बार [illegible] [illegible] वायुसे [illegible] [illegible] कि कुछ समयके [illegible] [illegible] वायु [illegible] [illegible] सूर्यकी [illegible] [illegible] दिनमें [illegible] नहीं सकते [illegible] [illegible]

घरमें भी पूरा हो जाता है; पर हाँ यदि आप गन्दी और विकारू हवाके डरसे ही किवाड़े बन्द करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ़ हवाकी आवश्यकता है; आप इस बातकी कभी फ़िक्र न करें कि यह साफ़ हवा कितनी ठंढी है। बहुत तेज़ जाड़ा पड़ने पर अगर यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ीसी अवश्य खोल दें; क्योंकि बहुत तेज़ ठंढकसे सब प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है।

सदा खुली हवामें रहनेका अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं बल्कि उस दशामें तुम गन्दी और बन्द हवामें थोड़ी देरतक भी न रह सकोगे। अभी हालमें जब कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तब वहाँके एक टापूमें उनका जहाज़ ठहरा था। वहाँके कुछ जंगली लोग कप्तानके साथ जहाज़ पर चले आये और थोड़ी देरतक उसकी कोठरियोंमें रहे। इतने ही समयमें उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, छातीमें दरद होने लगा और उनमेंसे दूसरे बुखार भी आने लगा। पुश्तहा पुश्तसे खुली हवामें रहनेके कारण वे उसके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस पाँच मिनिट भी गन्दी हवामें रहकर वे उसके दुष्परिणामसे न बच सके।

व्यायाम।

अब हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तिम सिद्धान्तकी कुछ बातें बतलाते हैं। [illegible] जल और वायु आदिके अतिरिक्त मनुष्यको [illegible] की बहुत ही आवश्यकता है। [illegible] [illegible] है कि आवश्यक [illegible] किसी प्रकार [illegible] [illegible] होता [illegible] [illegible] करने [illegible] रखने [illegible] [illegible]

डंड पेलना, बैठकें करना और मुगदल फेरना कहीं बेहतर है। अस्पताल बन[illegible]
नेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाड़े और व्यायामशालायें बनानेमें पै[illegible]
रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चंगा करनेका प्रयत्न व्य[illegible]
है; प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिससे रोगका मूल ही नष्ट हो जाय, उसे उत्प[illegible]
होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड़ छोड़ कर पेड़ काटना कभ[illegible]
लाभदायक नहीं हो सकता क्योंकि जड़ फिर पनपगी, पेड़ फिर उगेगा। यह[illegible]
नहीं बल्कि उसके बीज बनेंगे और गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न होंगे[illegible]
अपने शरीररूपी भूमिको रोगरूपी वृक्षके जमने योग्य ही न होने दो, और यद[illegible]
कोई रोग उत्पन्न हो उसका समूल नाश करो, इसीमें तुम्हारा, तुम्हारे[illegible]
जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त संसार तथा मानव-जातिका कल्या[illegible]
है। इत्यलम्।